International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

ईशावास्योपनिषद् में विद्या - अविद्या तथा आत्मा के स्वरूप का दार्शनिक विवेचन

सुमन

शोधार्थी दर्शनशास्त्र विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

संक्षेप

ईशावास्योपनिषद् पर लिखे इस लेख में अतिभौतिकतावाद तथा सन्यासवाद दोना ं ही मार्गों की कमियों का विवेचन किया गया है। एक आदर्श मानव जीवन जीने के लिए दा नों में से किसी एक मार्ग का पूर्णतः स्वीकृत नहीं किया जा सकता बल्कि दोना ं मार्गों का अंशतः स्वीकृत करके एक समेकित मार्ग का अनुसरण करने की आवश्यकता है। अर्थात् कहा जा सकता ह ै कि यह मध्यम मार्ग की ओर संकेत करता है।

मूल शब्द : विद्या, अविद्या, परब्रह्म, प्रवृत्ति मार्ग, निवृत्ति मार्ग

परिचय

ईशावास्या पनिषद् का परिचय इस प्रकार से है कि यह यजुर्वेद का 40 वाँ अध्याय है।
वेदा ं के तीन विभाग हैं– कर्म, उपासना और ज्ञान।
विश्व के कारण तत्त्व परब्रह्म का विचार ज्ञानकाण्ड में किया गया है। कर्म और उपासना साधन हैं तथा ज्ञान साध्य है। वेदों के इस ज्ञानकाण्ड का नाम ही उपनिषद् है। इसी का ब्रह्मविद्या का आदिस्त्रा त कहत हैं। उपनिषद्ों का मुख्य उद्देश्य माना जाता है कि ब्रह्म अथवा आत्मा के यथार्थ स्वरूप का बोध कराना ह ै।
उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र आ ैर गीता का वेदान्त दर्शन में प्रस्थानत्रयी कहा जाता है। भगवद्गीता इन्हीं उपनिषद्रूपी कामध नु का अमृतमय तय ह ै।

अविद्या तथा आत्मा का स्वरूप

उपनिषद् का प्रारम्भ शान्ति पाठ से होता है।
ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ऊँ शान्तिः। शान्तिः।। शान्ति :।।।
अर्थात् कार्यब्रह्म भी पूर्ण है तथा पर ब्रहम भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की ही उत्पत्ति हा ती है तथा पूर्ण में से पूर्ण घट जाने यानी पूर्ण का पूर्णत्व लेकर पूर्ण ही बच जाता है। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

ईशावास्यम' आदि मन्त्रों तथा कर्म का संबंध ?

ईशावास्यम् आदि मन्त्रों का कर्म में विनिया ग नहीं बल्कि कर्म से विरोध है। क्योंकि य मन्त्र आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करते है ं जा कि कर्म का शेष नहीं हैं। य मन्त्र आत्मा के यथार्थस्वरूप का प्रकाश करके आत्मा सम्बन्धी स्वाभाविक अज्ञान का निवृत करते हुए संसार के शोकमा हादि धमा ं के विच्छेद के साधनस्वरूप आत्मैकत्वादि विज्ञान का ही उत्पन्न करते है।
प्रथम – शासन कर्ता का ईट् कहत हैं, उसका तृतीयान्त रूप ईशा है।

सब का / सम्पूर्ण जगत का ईशन कर्त्ता ?

सब का ईशन करने वाला परमेश्वर परमात्मा है। यह उपनिषद् परमात्मा का पूर्ण विवेचन प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार वही सब जीवा ं का आत्मा हा कर अन्तर्यामी रूप से सबका ईशन करता ह । ।। 1 ।।

इसमें पुरुष के दा प्रकारा ं का विवेचन हुआ है –

(1) आत्मवेत्ता – वह पुरुष जो इस भावना से युक्त है कि ईश्वर ही चराचर जगत का आत्मा है। इसका तीना ं एषणाओं के त्याग में ही अधिकार है कर्म में नहीं।

(2) अनात्मज्ञ – आत्मतत्त्व का ग्रहण करने में असमर्थ। अब 'मनुष्य के जीवन की **महत्ता है' इसको मानते हुए यह नैतिक प्रश्न उठाया**

जाता रहा है कि किस प्रकार के मार्ग पर चलकर पुरुष आत्मवेत्ता हा सकता हैं ?

दो प्रकार के मार्ग मनुष्य मात्र के लिए बतलाए गए ह ं –

1 प्रवृत्ति मार्ग 2 निवृत्ति मार्ग

प्रवृत्ति मार्ग – सौ वेर्ष, जो कि पुरुष की बड़ी से बड़ी आयु मानी गयी है, को जीने की इच्छा करने वाले, मनुष्यत्व मात्र का अभिमान करने वाले के लिए अग्निहोत्र आदि शास्त्रविहित कमा ं का करते हुए जीने की इच्छा का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

निवृत्ति मार्ग – तीना ं एषणाओं अर्थात् सन्तान धन तथा नाम आदि की इच्छा को त्यागना ही निवृत्ति मार्ग ह ।

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति य दोना ं ही मार्ग सृष्टि के आरम्भ से ही परम्परागत हैं। प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वाला पुरुष अनात्मज्ञ की श्रेणी में आता ह जैसे कि समाज में अधिका ंश मनुष्य होते है ं। निवृत्ति मार्ग का पालन करने वाला पुरुष संन्यासी आत्मवेत्ता या योगी कहलाता है।

जिनमें वेद प्रतिष्ठित है ं ऐसे दा ही मार्ग हैं, एक प्रवृतिलक्षण धर्म मार्ग तथा दूसरा अच्छी तरह भावना से किया हुआ निवृत्ति मार्ग। धर्म प्रवृत्ति मार्ग प्रधान लक्षण है ं। वे ही कर्म उस आत्मतत्त्व तक ले जाने में सहायक है ं जा धर्म के अनुरूप किए जाते है ं। संन्यासी या निवृत्ति मार्ग भी तभी साथ क है जब वो शुद्ध भावना से किया जाता है। यहा ं जीवन जीने के मार्ग बतलाने के उपरान्त यह प्रश्न खड़ा होता है कि इन मार्गों पर चलने का परिणाम क्या होता है, तथा अज्ञानी का आत्मघाती क्यों माना जाता है ?

अज्ञानी की निन्दा करते हुए कहा गया है कि अद्वय परमात्मभाव की अपेक्षा से या ख ुद का परमात्मा के सबसे करीब साबित करने या स्वयं का दूसरे से अधिक ताकतवर समझने क भाव से देवता आदि भी असुर ही हैं। उनके सम्पत्ति स्वरूप ला क 'असूर्य' है। जिनमें कर्म फलों का भोग होता है वे या नियां अज्ञान से आच्छादित हा ती है ं। जा का ई आत्मा का नाश करते है ं वे आत्मघाती हैं, अज्ञानी है। ।। 3 ।।

अविद्यारूप दा ष के कारण अपने नित्यसिद्ध आत्मा का तिरस्कार करने से प्राकृत अज्ञानीजन आत्मघाती कहे जाते है ं। इसी आत्मघातरूप दोष के कारण ही वे जन्म–मरण का प्राप्त होते है ं। इसके विपरीत ज्ञानी ला ग मुक्त हो जाते हैं।

आत्मतत्त्व क्या है ?

आत्मतत्त्व के लक्षण – अपने स्वरूप से विचलित न हा ने वाला, एक तथा मन से भी तीव्र गति वाला।

आत्मतत्त्व का इन्द्रिया ं प्राप्त नहीं कर सकी क्योंकि यह उन सबसे आगे विद्यमान ह । मन से भी अधिक वेगवान है। स्थित होने पर भी वह सभी गतिशीलों से अधिक गतिवान है। मनोव्यापार का व्यवधान रहने के कारण आत्मा का तो आभास मात्र भी इन्द्रिया ं का विषय नहीं हा ता।

वह चलता भी है आ र नहीं भी चलता । अर्थात् वह अचल हैं फिर भी चलता हुआ जान पड़ता है। वह दूर है और समीप भी है। वह सबके अन्तर्गत है आ र वही सबके बाहर भी है। दूर इस अर्थ में है कि अज्ञानियों का वह

सैकड़ों, करोड़ों वर्षों में भी अप्राप्य है तथा समीप विद्वानों का आत्मा होने के कारण है। वह हमारे भीतर भी है तथा हमसे बाहर जगत में भी विद्यमान है। "प्रज्ञाधन ही है" अर्थात् बाहर भीतर के भेद को त्यागकर सर्वत्र है। ।। 4 ।।
घृणा अपने से भिन्न किसी दूषित पदार्थ का` देखने वाले पुरुष का` ही होती है। जो निरन्तर अपने अत्यन्त विशुद्ध आत्मस्वरूप का` ही देखने वाला है उसकी दृष्टि में घृणा का निमित्त भूत कोई अन्य पदार्थ है ही नहीं।।।6।।
वह आत्मा सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, स्नायु से रहित, निर्मल, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ सर्वोत्कृष्ट और स्वयम्भू उस नित्यमुक्त ईश्वर ने सर्वज्ञ हा`ने के कारण यथाभूत कर्म, फल और साधन के अनुसार अर्थों कर्तव्यों – पदार्थों का यथाया`ग्य रीति से विभाग किया है।

विद्या, अविद्या का विवेचन ?

ईशावास्या`पनिषद् के नवें मन्त्र में कहा गया है कि जा` अविधा की उपासना करते है ं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते है ं आ`र जो विद्या में ही रत रहते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं। ।। 9 ।।
विद्या – परमात्मा या आत्मा का ज्ञान।
अविद्या – भौतिक कर्म आदि व्यावहारिक ज्ञान।
अविद्या की उपासना करने वाले अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म करने तथा कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा रखने वाले अन्धकार में प्रव`श करते है ं अर्थात् उस आत्मतत्त्व का` जानने की ओर नहीं जा पाते हैं।
विद्या में रत रहन` वाले अर्थात् भौतिक कर्म आदि को त्यागकर केवल विद्या को जानने का प्रयास करने वाले उससे भी घा`र अन्धकार में प्रवेश करते हैं। विद्या की उपासना से देव ला`क की प्राप्ति हा`ती है तथा कर्म से पितृ लोक मिलता है। कर्म विद्या के विरा`धी है ं इसलिए इन्हें अविद्या कहा जाता है। विद्या और कर्म के अवान्तर फल–भेद का ` ही इसके समुच्चय का कारण बतलाते है ं नहीं ता` एक दूसरे के समीप हुए फलयुक्त और फलहीन परस्पर अंग और अंगी हो जाय`ंगे।
विद्या और कर्म के इस सिद्धान्त को हम जगत के परिप्रेक्ष्य में देखते है ं कि एक ही समाज में रहने वाले या एक ही घर में रहने वाले मनुष्यों का जीवन अलग – अलग होता है का`ई सुखी है, का`ई दुःखी है। यह सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि जब एक ही व्यक्ति में विद्या और कर्म का भेद स्पष्ट हो सकता है ता` अलग – अलग मनुष्यों का जीवन परस्पर साथ रहते हुए भी स्पष्टतः अलग हा`ता है। जिस प्रकार के कर्म जा` करेगा, फल भी उसे वैसा ही मिलेगा।
अविद्या से तो आत्म तत्त्व का` जाना ही नहीं जा सकता तथा केवल विद्या से भी आत्मतत्त्व का` नहीं जाना जा सकता, तो फिर आत्मतत्त्व का` जानने का रास्ता क्या है ?
अविद्या में हम संसार में कर्म करने तथा उनके फल पाने में ही रह जाते है ं आत्मतत्त्व जैसा का`ई जान मस्तिष्क में आ ही नही ं पाता। अविद्या का सफर केवल मृत्यु तक है उससे आगे नहीं।
केवल विद्या में रत रहने से भी आत्मतत्त्व का` नहीं जाना जा सकता। क्योंकि किसी को जानने के लिए संसार में रहना आवश्यक है और संसार में अगर जिन्दा रहना है ता` कुछ अनिवार्य कर्म ता` करने ही पड़ेगें। यदि सभी कमा ं का` त्यागकर व्यक्ति केवल विद्या की उपासना में ही लगा रह`गा तो वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाय `गा, तो आत्म तत्त्व कैसे प्राप्त होगा। इसलिए विद्या आ`र अविद्या दोनों का समन्वय करके ईशावास्योपनिषद् एक दृ ष्टि पेश करता है।
जा` विद्या आ`र अविद्या दा`नों का` ही एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु का` पार करके विद्या से अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।
विद्या और अविद्या अर्थात् देवताज्ञान आ`र कर्म इन दोना ं का` एक साथ एक ही पुरुष से अनुष्ठान किये जाने योग्य माना जाता है। इस प्रकार समुच्चय करने वाले को ही एक पुरुषार्थ का सम्बन्ध क्रमशः होता है।

सर्वप्रथम अविद्या की उपासना की जानी चाहिए। संसार में रहकर अग्निहा`त्रादि कर्म करते हुए ही मृत्यु को पार किया जाता है। अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए विद्या में रत होना चाहिए, ताकि मृत्य ु को पार करके अमृत्व का` प्राप्त किया जा सके।

जा` असम्भूति (अव्यक्त प्रकृति) की उपासना करते है ं वे घा`र अन्धकार में प्रवेश करते है ं और जा` सम्भूति (कार्य ब्रह्म) में रत है वे माना` उससे भी अधिक अन्धकार मे प्रवेश करते हैं। सम्भवन, उत्पन्न होने का नाम ह ै और वह जिस कार्य का धर्म है उस` सम्भूति' कहते हैं। सम्भ ूति से भिन्न असम्भ ूति प्रकृति कारण अथवा अव्याकृत नाम की अविद्या है। अज्ञानात्मिका अविद्या जा` कि कामना आ ैर कर्म की बीज है, कि जा` ला`ग उपासना करते है ं, वे उसके अनुरूप ही अज्ञानरूप घा`र अन्धकार में प्रवेश करते है ं तथा जा` सम्भूति यानी हिरण्यगर्भ नामक काय ब्रह्म में रत ह ैं, वे उससे भी गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

जा` सम्भूति और कार्यब्रह्म – इन दा`नों का` साथ–साथ जानता ह ै, वह कार्यब्रह्म की उपासना से मृत्य ु का` पार करके सम्भूति के द्वारा (प्रकृतिलय रूप) अमरत्व प्राप्त कर लेता ह ै।

अन्त में आत्मदश न के लिए 'पूषन् ' जो कि एक देवता है, उससे प्रार्थना की गई ह ै।

आदित्य मण्डलस्य ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है। हे पषून ! मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसका अनावरण कर दे । ।। 14 ।।

अर्थात् सोने के पात्र में आदित्यमण्डलस्थ बह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढक दिया गया है। सत्य की उपासना करने के कारण सत्यस्वरूप की उपलब्धि के लिए मैं इस बर्तन में जो रखा है उसे देखना चाहता हूँ। अर्थात् परमात्मा के दर्शनों का मैं अभिलाषी हूँ।

साराशंत

ईशावास्योपनिषद ्म ेंआत्मतत्त्व को जानन `क `लिए सांसारिक कर्म और विद्या दोनों को साथ–साथ जानने का संदेश दिया गया है। न ही केवल अविधा से तथा न ही केवल विद्या से बल्कि विद्या– अविद्या के समन्वय से ही आत्मतत्त्व को जाना जा सकता है।

संदर्भ सूची

मूल ग्रंथ . ईशादि नौ उपनिषद् ,शांकरभाष्यार्थद्धए गीता प्रेसए गोरखपुर । 1421

1ण नरेंद्र विद्यावाचस्पतिए 2012ए उपनिषद् एक सरल परिचयए विजय कुमार गोविंदराम हासानंद

2ण डॉ मंजु नारंगए 2015ए उपनिषद् मंथनए ईस्टर्न बुक लिंकर्स

3ण जयकिशनदास सादानीए 2019ए उपनिषदों की कहानियां

4ण चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यए 2017ए उपनिषद्ए सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

5ण डॉ शशि तिवारीए 1995ए उपनिषदों की बोध. कथाएंए मेहरचंद लछमणदास पब्लिकेशंस

6ण डॉ सूर्यमणि मिश्रए 2016ए ईशादि नौ उपनिषद्ए चिंतन प्रकाशनए कानपुर

7ण त्कींातपींदंदए 1994ए जेम च्तपदबपचंस न्चदपींकेए ।ससमद – न्दूपदए भ्ंतचमतए प्दकपं

8ण विनय कुमार अवस्थीए 2002ए उपनिषद् एक रहस्यए लखनऊ किताब घर